कथा-कहानी मंच

गति मुक्ति

अनन्त आलोक

जन्म : 28 अक्तूबर 1974

शिक्षा : वाणिज्य स्नातक, शिक्षा स्नातक, स्नातकोत्तर हिंदी

संप्रति : हिमाचल सरकार में अध्यापन

पुस्तकें : तलाश (काव्य संग्रह-2011), यादो रे दिवे (सिरमौरी में हाइकु अनुवाद- 2016), मिस 420 ऑडियो उपन्यास-2021, पॉकेट एफ. एम. पर उपलब्ध एवं चर्चित:स्कैंडल पॉइंट और अन्य कहानियां-2022, प्रकाशित और चर्चा में

प्रसारण : दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं प्राइवेट टीवी चौनल पर साक्षात्कार, कवितायेँ, गजलें,

सम्मान : सिरमौर कला संगम हिमाचल प्रदेश, हिमोत्कर्ष, शंखनाद मीडिया, नेपाल में युवा प्रतिभा सम्मान सहित स्पेक्ट्रम हिमाचल द्वारा सम्मान।

संपर्क : 941863377

जज साहब ने ज्यों ही मुकदमें का फैसला सुनाया, पब्लिक से खचाखच भरे कोर्ट रूम में खलबली मच गई। लोग बहस करने लगे! शोर होने लगा! वादी पक्ष को पूरा यकीन था कि फैसला उनके ही हक में होगा। लेकिन फैसला प्रतिवादी के पक्ष में आया तो सबके पांव तले से जमीन खिसक गई। ये कैसे हुआ! क्या हुआ! सब हैरान परेशान थे। वे तो सरेआम कहते फिरते थे 'सारी कायनात उनके हक में है जोरू का भाई भी उनके हक में तो फैसला भी उनके हक में! फैसले की क्या मजाल जो उनके हक में न आए!'

चारों खाने चित्त पड़ा जमींदार सज्जन सिंह को तो कोर्ट रूम में ही अटैक पड़ गया था। अस्सी साल का सज्जन सिंह इस केस को अपनी प्रतिष्ठा का सवाल बना बैठा था। अपने बेटे के नाम मुख्यारनामा करने के बावजूद वह खुद लाठी के सहारे कोर्ट पहुंचा था आज फैसला सुनने। सज्जन सिंह की टांगे बेशक कांपती थी खड़े होते हुए भी लेकिन वह अपनी लाठी जमीन पर ठकठकाते हुए कहता था, 'जब तक लाठी मेरे हाथ में है तब तक भैंस मेरी है!' उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि जिन लोगों को उसने ताउम्र अपने पांव की ठोकर पर रखा उन्हीं लोगों से एक दिन वह हार जायेगा! उसकी सांसे तेज-तेज भाग रही थीं। कान गर्म होकर लाल हो गए थे। उसके कानों में ऐसी आवाजें आ रही थीं जैसे असंख्य घोड़े किसी युद्ध के मैदान में दौड़ रहे हों और

सज्जन सिंह की टांगे बेशक कांपती थी खड़े होते हुए भी लेकिन वह अपनी लाठी जमीन पर ठकठकाते हुए कहता था, 'जब तक लाठी मेरे हाथ में है तब तक भैंस मेरी है!' उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि जिन लोगों को उसने ताउम्र अपने पांव की ठोकर पर रखा उन्हीं लोगों से एक दिन वह हार जायेगा!

जज ने फैसला सुनाने के बाद पुलिस से कहा था कि सज्जन सिंह के खिलाफ, रवि और उसके परिवार पर अत्याचार और जातिगत भेदभाव करने के जुर्म में एट्रोसिटी एक्ट के तहत एक नया मुकदमा दायर किया जाए।

वह मैदान में निहत्था और हारा हुआ जमीन पर पड़ा है। हिनहिनाते हुए घोड़े उसके चारों और घूम रहें हैं। पता नहीं कब ये घोड़े अपने अगले दोनों खुर उठा कर उसकी छाती पर धड़ाधड़ बरसा दें!

उसके खेमे में तो मानो आग ही लग गई। वे कोर्ट रूम में ही शोर मचाने लग गए। वर्धन और मेरे साले के चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित खुशी थी। वे झूम जा रहे थे। एक दूसरे को बधाई दे रहे थे। एडवोकेट वर्धन ने मुझे गले लगकर बधाई दी। मेरी खुशी का तो मानो ठिकाना ही न था। मैं एडवोकेट के हाथ पकड़ कर चूम रहा था, ...बार-बार उसका धन्यवाद कर रहा था।

'आर्डर, आर्डर, आर्डर!' मुकदमे का फैसला आने के बाद कोर्ट रूम में हुई सुगबुगाहट को शोर में बदलते देख जज ने लकड़ी का मोटा-सा हथोड़ा दो-बार अपने टेबल पर मारते हुए कहा था।

हम बाहर निकल आये लेकिन वादी पक्ष के कान पर जूं तक न रेंगी। शोर बढ़ता देख जज ने तुरंत आदेश दिया, 'इंस्पेक्टर इन्हें बाहर ले जाइए' और खुद वे उठे और अपने स्थान पर पीछे की ओर घूमते हुए अपने चैम्बर में विलीन हो गए। इंस्पेक्टर मोहन ने तुरंत सभी को कोर्ट रूम से बाहर कर दिया। बहस करते हुए लोग बाहर चले आए और जमींदार सज्जन सिंह वहीं मुंह बाए एक कोने में बैठा रह गया। उसका किसी को ध्यान ही नहीं रहा। सभी जैसे पजल हो गये थे। सज्जन सिंह के अंदर अब इतनी शक्ति नहीं बची थी कि वह खुद उठ कर बाहर जाए। न ही वह किसी को पुकार पा रहा था। उसके कानों में जज के शब्द ऐसे गूंज रहे थे मानों कान में किसी ने खोलता तेल डाल दिया हो।

जज ने फैसला सुनाने के बाद पुलिस से कहा था कि सज्जन सिंह के खिलाफ, रवि और उसके परिवार पर अत्याचार और जातिगत भेदभाव करने के जुर्म में एट्रोसिटी एक्ट के तहत एक नया मुकदमा दायर किया जाए। उसे वही सुनाई दे रहा था बार-बार! उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया था। वह उठने की कोशिश करता और फिर नीचे गिर पड़ता। उधर कोर्ट से बाहर आकर भी लोगों का शोर कम न हुआ और वे और जोर से बहसबाजी करने लगे। इंस्पेक्टर ने प्यार से समझाते हुए सब से कहा, 'चलिए प्लीज् बाहर चलिए। आप लोग कोर्ट परिसर के अंदर किसी भी तरह का शोर-शराबा नहीं कर सकते! आप लोगों को जो भी बात करनी है। परिसर से बाहर जाकर कीजिये। ये कोर्ट है यहां शोर मचाना अलाऊ नहीं है। चलिए-चलिए प्लीज।'

लोग मानने को तैयार ही नहीं थे। कुछ लोग तो धक्का-मुक्की पर उतर आए थे अपने ही वकील के साथ। वहां मौजूद अधिकतर लोग फैसले की जम कर तारीफ कर रहे थे। यहां तक कि बाकी वकीलों ने भी इस फैसले की तारीफ की और एडवोकेट वर्धन को बधाई दी। वादी को पूरा विश्वास था कि फैलसा उन्हीं के हक में होगा इसलिए वे उस दिन अपने रिश्तेदारों को भी साथ लेकर आए थे। अब उनके चेहरों पर निराशा साफ देखी जा सकती थी। वे लोग आपस में बहसबाजी करते-करते आपस में ही उलझ पड़े थे। शोर इतना था कि कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। बस इतना समझ आ रहा था कि 'ऐसा कैसे हो सकता है यार... हम नहीं मानते ये फैसला...। अरे ये वकील ही बेकार है। मिल गया होगा साला... उनके साथ। हम तो पहले ही कर रहे थे कि...।' किसी ने बीच में कहा, 'जज को इतना तो देखना चाहिए कि क्या फैसला दिया जा रहा है। ऐसा होता है कहीं! हद की बात तो ये है यार कि जज भी हमारी ही कास्ट का है फिर भी...।' भीड़ में कोई फुसफुसाया तो दूसरे ने मुंह पर ऊंगली रखते हुए उसे चुप रहने का इशारा किया। उनका एडवोकेट जोसेफ उन्हें समझा रहा था, 'कोई बात नहीं आप लोग चिंता क्यों करते हो? हाई

कोर्ट में हम अपील करेंगे। हम चुप बैठने वाले नहीं है।' हालांकि वह जानता था कि जो भी फैसला दिया गया है, वह गलत नहीं है और गवाहों और सबूतों को मध्य नजर रखते हुए फैसला यही आना था। उसे यकीन था पहले से ही, लेकिन एडवोकेट है! उसका तो बिजनस ही यही है न! वो ये थोड़े ही कहेगा, 'बस अब हम कुछ नहीं कर सकते।' ऐसी बात तो कोई भी एडवोकेट एक ही स्थिति में कह सकता है जब क्लाइंट हाथ खड़े कर दे कि अब उसके पास कोई पैसा नहीं है। या उसे यकीन हो जाए कि अब क्लाइंट से पैसा निकलवाना मुश्किल है। मैंने अपने वकील के मुंशी को कह कर जजमेंट की कॉपी के लिए अप्लाई करवा दिया और इत्मीनान से अपनी गाड़ी की ओर रवाना होते हुए घर पर फोन कर फैसले की खुशखबरी पहुंचा दी। घर पर भी उत्सव-का-सा माहौल हो गया। चार बज चुके थे। हमारा केस लास्ट केस था। मुझे तो खुशी हो ही रही थी मेरा वकील भी इस फैसले से बहुत खुश था। वह तो पहले ही कहता था, 'ये अलग तरह का केस है और इसका फैसला भी एकदम अलग तरह का होगा देखियेगा!' हुआ भी वही।

आखिर सत्य की जीत हुई। मेरे मुंह से खुद-ब-खुद निकला 'सत्य मेव जयते। मैंने एक बार फिर अपने वकील के पास जाकर कन्फर्म किया, 'फैसला हमारे ही पक्ष में आया है न?' मुझे वाकई यकीन नहीं हो रहा था। खुशी के मारे मैं फूला नहीं समा रहा था कि इतनी बड़ी और स्ट्रोंग पार्टी सामने होते हुए। जिनके सारे रिश्तेदार भी उनके साथ। इतना ही नहीं उनके पास जो एडवोकेट था वो भी जिला का सबसे मशहूर और सबसे महंगा एडवोकेट था। उसके बाद भी फैसला हमारे हक में! मैंने कहा, 'एडवोकेट साहब मैं आपके जितना तो नहीं, लेकिन थोड़ा बहुत पढ़ा-लिखा तो हूं। मैंने सुना था कि कानून की किताब में भी ये लिखा हुआ है कि रिच गवर्न्स दा ला एंड ला गवर्न्स दा पूवर। मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा कि मेरे साथ न्याय हो गया। मुझे तो उन जमींदारों के एक होने से डर लग रहा था। मैं ठहरा एक छोटे से कद का आदमी। हालांकि मैं ये तो नहीं कहता कि गरीब हूं। समय और कुदरत ने सब कुछ दिया है मुझे। जरूरत लायक पैसा है। खेती है। अच्छे पढ़े-लिखे बच्चे हैं। अच्छी खासी नौकरी कर रहे हैं। सब बच्चे ठीक-ठाक हैं कोई समस्या नहीं। हालांकि जमीन और भी बहुत खरीदी है बच्चों ने लेकिन जिस जमीन को मैंने अपना खून-पसीना देकर संवारा है, उस जमीन को अपने हाथ से गवां देने का भय था बस! लेकिन अब मुझे यकीन हो गया कि अब मेरी जमीन कोई नहीं छीन सकता! मैं तो जज साहब का भी बहुत-बहुत आभार प्रकट करना चाहता हूं। क्या मैं उनसे मिल सकता हूं एडवोकेट साहब ?'

आखिर सत्य की जीत हुई। मेरे मुंह से खुद-ब-खुद निकला 'सत्यमेव जयते। मैंने एक बार फिर अपने वकील के पास जाकर कन्फर्म किया, 'फैसला हमारे ही पक्ष में आया है न?' मुझे वाकई यकीन नहीं हो रहा था। खुशी के मारे मैं फूला नहीं समा रहा था कि इतनी बड़ी और स्ट्रोंग पार्टी सामने होते हुए। जिनके सारे रिश्तेदार भी उनके साथ। इतना ही नहीं उनके पास जो एडवोकेट था वो भी जिला का सबसे मशहूर और सबसे महंगा एडवोकेट था।

'नहीं रवि ऐसा नहीं होता। जज साहब तो कितने ही लोगों के हक में फैसला देतें हैं दिन भर। तो क्या वे सभी से मिलते रहेंगें? फिर अपना काम कब करेंगे? आपके जैसे ओर भी कितने लोग है जो परेशान हैं। जिनके साथ अन्याय हुआ है। उनके साथ भी तो न्याय करना है न उन्हें। वैसे भी न्यायधीश की अपनी एक गोपनीयता होती है। वे आम लोगों से नहीं मिलते, मिलेंगे तो न्याय करने में परेशानी न आए इसलिए ऐसा होता है।' एडवोकेट वर्धन ने मेरी जिज्ञासा को शांत करते हुए कहा।

उन्होंने इस फैसले पर खुशी जाहिर करते हुए एक बार फिर कहा 'मेरी वकालत की जिंदगी में ये पहला ऐसा केस था जो अजीब तरह का तो था ही बहुत पेचीदा भी था। मुझे यकीन है कि जज साहब के सामने भी इस तरह का पहला केस होगा ये। उन्होंने

एकदम सही और न्यायोचित फैसला दिया है। वाकई, आज असल में मेरा भी कालर खड़ा हो गया है गर्व से। ये सही है कि हर एडवोकेट के पास जो भी केस आता है वह उसे ले लेता है क्योंकि उसका पेशा है ये। सही-गलत देखेगा तो खायेगा क्या? सही-गलत तो कोर्ट को देखना है न! बेशक हर केस से एडवोकेट को पैसा जरूर मिल जाता है, पर मन की शांति और संतुष्टि तो तब ही मिलती है जब वह किसी के साथ न्याय कर पाता है। न्याय पर आधारित जो भी फैसला होता है उस पर न तो एडवोकेट को और न ही जज को कभी कोई पछतावा होता है।

एडवोकेट का घर मेरे घर के पास ही था इसलिए मैंने कहा, 'आज आप अपनी गाड़ी यहीं पार्क कर दीजिये और मेरे साथ ही चलिए। कल भी आपको कोई लिफ्ट मिल ही जाएगी आने के लिए। साथ चलेंगे तो कुछ और बातें हो जायेंगी और घर भी पहुंच जायेंगे।' एडवोकेट ने कहा, 'ओके! तो मैं अपनी गाड़ी एडवोकेट नीरज को दे देता हूं। उसके घर पर बहुत जगह है पार्किंग के लिए, कल ले आएगा कोर्ट।' थोड़ी देर बाद हम बातें करते हुए घर की और चल पड़े।

पीछे वाली सीट पर मेरा साला कपिल बैठा था। एडवोकेट ने उसके बारे में पूछा, 'कपिल इंट्रोवर्ट है शायद बहुत कम बोलता है। वह अब तक बस हां-न में सिर हिला रहा था और हूं-हां में ही बात कर रहा था जब से हमारे साथ गाड़ी में बैठा था।' एडवोकेट की बात सुनकर कपिल बोला, 'नहीं-नहीं भाई साहब ऐसी कोई बात नहीं। दरअसल मेरा भी कुछ ऐसा ही मामला है। मैं यही सोच रहा था कि अपना केस भी आपको दे दूं और आगे अपील कर दूं सुप्रीम कोर्ट में। बस इन्हीं विचारों में खोया था।"

कपिल ने बात शुरू करते हुए कहा तो मैंने जवाब दिया, 'हां-हां क्यों नहीं। जरूर कीजिये। एडवोकेट साहब अपना बेस्ट देकर आपको न्याय दिलाएंगे। आप जब चाहें इनके ऑफिस चले जाएं।' कपिल ने तुरंत एडवोकेट वर्धन का मोबाइल नंबर नोट कर लिया। 'जीजा जी, आपका केस एग्जेक्ट्ली था क्या? मुझे समझाएं जरा, रास्ता भी कट जाएगा और मुझे अपने केस के लिए भी कुछ हेल्प मिल जाए शायद।' कपिल ने पीछे से मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए कहा तो मेरा ध्यान भंग हुआ। 'हां! कपिल एडवोकेट साहब ने तो ये कहानी कई दफा सुनी है, जज साहब ने भी और अब आप भी सुन लो। मैं शुरू से सुनाता हूं, रास्ता लंबा है घर तक खत्म हो जायेगी।'

'जी, जीजा जी सुनाएं प्लीज्।' मैंने गाड़ी साइड में लगाई और एडवोकेट वर्धन से कहा, 'इससे आगे आप ड्राइविंग करें। मैं वैसे भी बूढ़ा आदमी और अपनी स्टोरी सुनाते वक्त कहीं ज्यादा इमोशनल हो गया और गाड़ी संभाल न पाया तो...। हमारा सबका फैसला हो जाएगा आज!' हल्की हंसी के साथ एडवोकेट वर्धन ड्राइवर सीट पर आ गया और मैं कंडक्टर सीट पर। वर्धन केवल मेरा एडवोकेट नहीं मेरा ही पड़ोसी भी है। वह मेरी ही उम्र का है और मेरे ही परिवार का है थोड़ा दूर का। उसने अब अपना पूरा ध्यान ड्राइविंग पर लगा दिया। हम लोग हाईवे पर आ गये थे। हमारे देखते ही देखते ये सड़क बनी थी। आज एन.एच हो गया। एकदम मखमल बरगा रोड। गाड़ी की बस सरऽऽ की आवाज आती थी। बाकी कोई आवाज नहीं! मैंने बताना शुरू किया, 'दरअसल हुआ यूं कि हम तीन भाई-बहन थे। एक मैं और दो बहनें। दोनों बहनें मुझ से बड़ी और सबसे छोटा मैं। इतना ही मुझे मालूम है। मेरे लिए वे ही मां-बाप, भाई-बहन सब कुछ थीं। मैं बहुत छोटा था तो मां-बाप नहीं रहे थे। कोई बीमारी आई थी, शायद प्लेग या कुछ ऐसा ही!... महामारी थी। कुल मिलाकर हमारे पूरे परिवार को निगल गई थी वह डायन। पता नहीं कैसे हम लोग बच गए, अपने गांव से भाग कर आए या भगाए गए ये भी नहीं मालूम!'

'ओह वैरी सेड!' कपिल बोला। 'तो सुनो, आगे मुझे बस इतना मालूम है कि हमारी देखभाल करने वाला एक शख्स था। हमारे जीजा। वह बड़ी बहन के साथ ही आ गए थे जब हम लोग अपने घर से आए थे। शादी ब्याह तो कोई हुआ नहीं था बस साथ रहने लगे, देखभाल करने लगे तो पति-पत्नी हो गए बड़ी बहन और जीजा जी। वह लंबे-तगड़े, जवान

हरियाणवी आदमी थे। खूब काम करते थे, खाते भी खूब थे। मुझे याद है एक बार बड़ी बहन ने खीर के साथ परांठे बनाये थे। खीर-परांठे जीजा को इतने स्वाद लगे कि खाने बैठे तो खाते-खाते उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कब बीस परांठे खा गए! एक परांठे में कम से कम दो रोटियां को आटा तो लगता ही है। पंद्रह-बीस रोटियां तो उनके लिए आम बात थी। लेकिन काम भी खूब करते थे। मरे हुए बैल को यूं खींच लेते थे जैसे किसी बकरे को खींच रहे हों। भई कुछ भी हो उन्होंने हमें कभी किसी तरह की कोई तंगी नहीं आने दी, इतना मुझे मालूम है।'

'वाह! तब तो बड़े ही बहादुर थे आपके जीजा! उसके बाद क्या हुआ?' कपिल ने समर्थन किया और असल कहानी पर आने के लिए मुझे चेताया। 'हां यार वो तो थे। हां, तो .. हुआ यूं कि मैं थोड़ा बहुत पढ़ भी लिया था उनकी मेहरबानी से लेकिन जल्दी ही ये सब छुड़वा कर मुझे भी पुश्तैनी जंजाल में फंसा दिया गया! हां जंजाल ही तो था! हम जहां रहते थे वहां थोड़ी-सी जमीन थी। जीजा खेत में काम करते थे अच्छा काम चल रहा था। लेकिन दो आदमी काम करते तो और अच्छा चलता, इसलिए मुझे भी काम करना शुरू करना पड़ा। वहां भी इसी तरह के कुछ जमींदार थे उन्होंने ही जीजा-बहन और हम सब को वहां बसाया हुआ था अपनी जमीन पर। वे जीजा से मरे पशु उठवाते। जीजा ये काम नहीं करना चाहते थे

मुझे याद है एक बार बड़ी बहन ने खीर के साथ परांठे बनाये थे। खीर-परांठे जीजा को इतने स्वाद लगे कि खाने बैठे तो खाते-खाते उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कब बीस परांठे खा गए! एक परांठे में कम से कम दो रोटियां को आटा तो लगता ही है। पंद्रह-बीस रोटियां तो उनके लिए आम बात थी। लेकिन काम भी खूब करते थे। मरे हुए बैल को यूं खींच लेते थे जैसे किसी बकरे को खींच रहे हों। भई कुछ भी हो उन्होंने हमें कभी किसी तरह की कोई तंगी नहीं आने दी, इतना मुझे मालूम है।'

लेकिन जमींदार कहते थे कि इसी लिए तो तुम्हें जमीन पर रखा है। ये काम करो वर्ना मारेंगे अलग और भगा भी देंगे यहां से! अब जाते भी तो कहां जाते! मैं उस समय बहुत छोटा था लेकिन जब कभी जीजा नहीं जा पाते तो वे लोग मुझे बुलाते, कोई भी पशु मरने पर। मुझे जाना पड़ता। छोटे-छोटे पशु तो मैं खींच लेता, लेकिन बड़ी गाय और बैल! मेरे लिए आफत थी! नन्हीं कमर पर रस्सी बांध कर जाता जोर लगाता। रोता, पेट में दर्द होता, गिरता फिर उठता। पर काम तो करना पड़ता वर्ना जमींदार के छोकरे मारते। कई बार तो जमींदार ने खुद बिहुल के डंडे से मेरी खूब पिटाई की थी, काम न हो पाने पर। मेरे हाथ कांप रहे थे जब पहली बार मैंने रांपी चलाई थी एक मरे हुए बछडू पर! उसकी आंखों की ओर देख कर मुझे रोनी आ गई थी! किसी हिरनी-सी उसकी काली-काली प्यारी आंखें, मानों उसकी मां ने उसकी आंखों में काजल के लंबे डोरे बना छोड़े हों। रोते-रोते उसकी खाल उतारी थी मैंने। बहुत प्यारा बछड़ा था वह, उसकी खाल उतारने के लिए मैं उसे जिस और पलटता वह उस और ही अपनी-नन्हीं टांगे पटक देता। उसके नन्हें-नन्हें खुर देख कर लगता था मानों उसने अपने पांव में काले रंग के खूबसूरत नए-नए बूट पहने हुए हों। उस रात मैं शाम को कुछ भी नहीं खा पाया था। भूखा ही सोने का प्रयास करता रहा लेकिन पूरी रात वही बछड़ा आंखों के आगे घूमता रहा। गांव वालों ने बताया था कि मालकिन उसे दूध नहीं देती थी। भूख से वह तीन महीने में ही मर गया। बछड़ा था न! इस लिए, बछड़ी होती तो इस लालच में खुशी से पालते कि आने वाले टाइम में ब्याएगी, दूध देगी। बछड़े का तो खर्च ही है बस। कितनी अजब बात है न कि आदमी हमेशा लड़का चाहता है कि उसके घर में पुत्र पैदा हो और गाय से उम्मीद करता है कि हमेशा बछड़ी पैदा हो। धीरे-धीरे मुझे आदत हो गई ये काम करने की, लेकिन बड़े पशु तो खींच ही नहीं पाता था। कोई हेल्प के लिए गाय की टांगों में बांधी रस्सी को भी हाथ न लगाता था। यहां तक कि

कई बार तो मुझे घर आकर अपनी बहन को बुलाकर ले जाना पड़ता। तब जाकर हम उस मरे हुए बड़े बैल या गाय को खींच कर गांव से दूर ले जा पाते। जिंदगी चलती रही धीरे-धीरे मैं थोड़ा और बड़ा हो गया। एक दिन वहां के जमींदारों के कुछ रिश्तेदार आए उनके घर। उन्होंने मुझे काम करते हुए देख लिया। बस फिर क्या था कहने लगे। हमारे साथ चलोगे? कहने क्या लगे जबरदस्ती मुझे ले जाने पर अड़ गए। आखिर हार कर जीजा को मुझे भेजना ही पड़ा। लेकिन एक समस्या थी कि मैं यहां अकेला कैसे रहूंगा। उन्होंने कहा, 'कोई बात नहीं कुछ दिन में कहीं से लड़के का ब्याह करवा दो फिर दोनों आ जाएं।' मुझे भी लगा कि शायद ये अच्छे इंसान हैं। काम तो करना ही है यहां भी वहां भी। आखिर बारह साल की अल्प अवस्था में मेरा ब्याह करवा दिया गया। हालांकि पत्नी मुझ से काफी बड़ी थी लेकिन उन्हें तो काम के लिए जरूरत थी न! और एक से भले दो। हम दोनों पति-पत्नी यहां नए गांव में आ गए। नया गांव यानी वही घर जहां हम लोग अब रहते हैं और जिस पर उन्हीं लोगों ने केस किया बाद में जो हमें यहां ले कर आए!'

'ओह! अच्छा! जिसका फैसला आया है आज।' कपिल ने जोड़ा।

'हां बिल्कुल वही! तो आगे हुआ यूं कि हम लोग आ तो गए। लेकिन रहें कहां! हमें रहने के लिए गांव से बहुत दूर, गांव के एकदम नीचे जंगल के बीच एक ओबरा दिया गया। जहां कभी भेड़-बकरियां चराने के लिए घुमंतू गडरिये आया करते थे। उन्हीं का बनाया गया एक छप्पर, टूटा फूटा जिसके भीतर से अनेक सांप-बिच्छू निकलते रहे थे कई सालों तक। वहां रहने का हुक्म हमें सुनाया गया। डर तो लगा लेकिन क्या करते! आ गए थे तो रहना पड़ा। हम दोनों मियां-बीबी दिनभर जमींदारों की बंधुआ मजदूरी करते और रात के अंधेरे में मिट्टी का गारा बनाकर उसकी लिपाई करते। तब जाकर कहीं हमने उस ओबरे को रहने लायक बनाया। जमींदार सज्जन सिंह ने कुछ जमीन हाथ के इशारे से बता दी कि इस पर तुम लोग काश्त करो और इसका जो भी मामला बनता है वह भी भरो, माल महकमे के पास। जमीन क्या थी जंगल था पूरा। जंगल था। घासणी थी। उसे रात को खोदकर खेत बनाए थे हमने। सज्जन सिंह के पास सैंकड़ो बीघा जमीन और जंगल था। शायद मामला देना मुश्किल हो रहा था। सो हमारे हिस्से में लगा दिया। कुछ तो कम हो। उसने आदेश दिया कि हमारे मरे हुए पशु खींचकर बाहर करने होंगे और उनकी खाल उतार कर हमारे। पांव के लिए जूते बनाने होंगे। उसका कहना था कि ये तुम लोगों का पुश्तैनी काम है और इसीलिए हमें यहां बसाया गया है!'

'बहुत बुरे हैं वो जमींदार, सच में ऐसे कैसे कोई किसी को फोर्स कर सकता है, ऐसा काम करने के लिए!' मैंने लंबी सांस भरते हुए कहा।

हां, यार जमाना ही बुरा था। कानून उनके हाथों में था। बड़े अफसर, सरकार सब उनका ही था। उनके पास धन था और हम जैसे गरीब तो बस गुलाम थे उनके। बंधुआ मजदूर थे। जैसे वे हुक्म करते हमें वैसा ही करना पड़ता। सच्चे जमींदार के ओबरे में आज भी कोई पशु यदि सुबह मरा हुआ मिले तो वे लोग तब तक अन्न ग्रहण नहीं करता जब तक कि मरा हुआ पशु ओबरे से बाहर न कर दिया जाए और उसे बाहर करने का काम किसका था? हम लोगों का। सुबह चाहे खाली पेट जाओ या खाना खा कर, चाहे बीमार हों, लाचार हों, मजबूर हों कोई घर पर न हो तो औरतों को भी ये काम करने के लिए मजबूर करते थे ये लोग। जो भी हो तब तक जमींदार तो रोटी नहीं खा सकता और ये पाप भी हमारे सर कि वे हमारे देर से आने की वजह से भूखे रहे। तो जाना पड़ता भागकर, दौड़कर, जैसे भी हो, जल्दी से जल्दी। अब तो हम लोगों में से बहुत कम लोग ये काम करते हैं और अब ये लोग मजबूर भी नहीं कर सकते। सब लोग कानून जानते हैं आज। लेकिन उस समय ये लोग दूर से आवाज लगाते थे। ओ फलाणा चमार! म्हारा बलद मर गया रे। एसी भार कोरदे म्हार खाणा था।' इसका मतलब है कि हमारा बैल मर गया है, इसे बाहर कर दे, हमें नाश्ता करना है। जब तक मरा पशु ओबरे से बाहर न हुआ तब तक तो नाश्ता नहीं कर सकते ये लोग। धर्म के खिलाफ है। किसी को

फोर्स करके उसका शोषण करना। उससे जबरदस्ती काम लेना। ये सब धर्म है इन लोगों के लिए। इसीलिए फलफूल रहे हैं ये लोग। एक बार तो हमारे एक रिश्तेदार दुर्गु ने अपने जमींदार के मुंह पर ही कह दिया था कि लो मैंने तुम्हारा बैल ओबरे से बाहर कर दिया है, अब खा लो।'

'अच्छा किया ऐसा ही कहना चाहिए। इतनी गंदी तरह से कोई आवाज़ देता है क्या? पागल साले!'

'हां ऐसे ही आवाज देते थे। कहीं-कहीं दूरदराज के गांवों में तो अब भी... जमींदार गाय को मां और बैल को पिता के सामान मानता है। ये अच्छी बात है, लेकिन एक बात समझ नहीं आई आज तक मुझे कि जिन्हें तुम मां-बाप मानते हो उनके चमड़े के जूते बनवाकर पहनते हो? ये कैसी मां और कैसा बाप? उनके मरने पर तुम तब तक अन्न ग्रहण नहीं करते जब तक उसे ओबरे से बाहर न कर दिया जाए और मरने पर उसी की खाल के जूते! छी! ठोंगी! साले!' ग्रामीण इलाकों में खासकर हिमाचल में आज भी ये मान्यता है कि जब तक मरे हुए पशु का चमड़ा न उतारा जाए और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर चील-कौओं को न खिलाया जाए तब तक पशु की गति-मुक्ति नहीं होती और ये गति-मुक्ति करने की जिम्मेदारी हमारी। वो भी मुफ़्त में। इसलिए वे हम लोगों को बाध्य करते हैं ये काम करने के लिए। ज्यादती यहीं खत्म नहीं हो जाती, वह तो शुरू होती है यहां से। जब मैं उनके पशुओं की खाल उतार रहा होता तो वे चुपके से पेड़ पर चढ़कर या फिर जंगल में कहीं झाड़ियों में छुप-छुप कर देखते रहते थे कि क्या कर रहा है? कैसे कर रहा है? एक बार मैंने गाय का चपड़ा उतारा और उसके टुकड़े-टुकड़े करने लगा ताकि पक्षी और कुत्ते जल्दी से उसे निपटा दें और पूरे माहौल में बदबू न फैले। किसी ने चुपके से मुझे वो पीस करते हुए देख लिया और पेड़ से उतरकर भागा और सारे गांव में अफवा फैला दी कि मैं गाय का मांस घर ले जाने के लिए उसके टुकड़े कर रहा हूं। जबकि मेरे परिवार में तो कोई बकरे भी मांस खाने वाला नहीं था। उस समय तो हम मात्र दो थे पति-पत्नी! मैंने उनके पशु फैंकने से मना किया तो वे मुझे मारने दौड़े।'

'हां हो सकता है किसी भाई ने कभी ऐसा किया हो। कितने ही लोग तो करते हैं। साउथ में भी और जब फोरेन से कोई राष्ट्रपति या कोई अन्य वीआईपी आता है तो प्रशासन खुद ही सर्व करता है उन्हें! यहां से कितना ही बीफ तो एक्सपोर्ट होता है। कौन नहीं जानता। आगे सुनिए। मैं रहता तो सज्जन सिंह की जमीन पर था और पशु पूरे गांव के फेंकने पड़ते थे। सबके लिए जूते बना कर देने पड़ते थे। इसके बदले वे क्या देते थे; एक सोला आटा! और तीज-त्योहार पर हमें आदेश कि पका हुआ भोजन लेने के लिए सभी घरों में आना होगा, मांगने के लिए। उस समय खाने के लिए होता भी नहीं था? तो जाना पड़ता था। सारा दिन तो उनके मरे पशु फेंकने में और उनके खेतों में काम करने में निकल जाता था। उसके बदले हमें मिलता था; अपमान, झिड़कियां और कुछ किसी बात पर जवाब दे दिया तो मार भी। एक बार हमारे ही एक रिश्तेदार का पढ़ा-लिखा लड़का शादी के मौके पर जमींदार के मंजे पर क्या बैठ गया, उन्होंने उसे इतना मारा कि उसकी मौत हो गई। हमें जब कभी ब्याह-शादी में या त्योहार पर उनके द्वारा बुलाया जाता था न, तो पता है कहां बिठाया जाता था? दूर आंगन के किनारे पर। या खेत के एक कोने में। इतना ही नहीं गरमा-गरम दाल-सब्जी एक फुट ऊपर से फैंकी जाती थी पत्ते पर। चाय-पीने के लिए भी पत्ते लेकर आने होते थे! अगर कोई इंकार कर दे तो उसकी शामत। इतना ही नहीं वे अपने जूते ठीक करवाने खुद नहीं आते थे। आवाज देकर हमें ही बुलाते थे टूटे-जूते ले जाने के लिए और

जमींदार गाय को मां और बैल को पिता के सामान मानता है। ये अच्छी बात है, लेकिन एक बात समझ नहीं आई आज तक मुझे कि जिन्हें तुम मां-बाप मानते हो उनके चमड़े के जूते बनवाकर पहनते हो? ये कैसी मां और कैसा बाप?

फिर ठीक कर के उनके घर भी छोड़कर आने होते थे। उसके बाद भी ये व्यापार नहीं था कपिल, ये अहसान था कि उन्होंने हमें जमीन दी है। इसलिए उसके बदले काम करो और बदले में मिलता था बस वही सोला, गालियां और जिल्लत भरी जिंदगी। पैसा तो किसी के पास उस समय होता भी नहीं था देने के लिए और हो भी तो हमें कौन देगा?'

'सोला! ये क्या होता है जीजा जी?'

'हां कपिल सोला एक बर्तन होता था एक बड़े कटोरे के आकार का, बस उसमें डालकर थोड़ा बहुत अनाज दे देते थे। उसके लिए भी लाख नखरे देखने पड़ते थे उनके। दूर से डालते थे बेग में। आधा तो नीचे गिर जाया करता था। फिर कहते थे उठा लो, अनाज है। इसकी बेकद्री नहीं करनी चाहिए। आज हम इनके घरों की ओर देखते भी नहीं। न इन्हें ब्याह शादी में बुलाते हैं और न खुद जाते हैं, हालांकि अब इतना भेदभाव नहीं रहा। अब तो कई गांवों में मरे हुए पशु भी खुद फेंकने लगे हैं ठाकुर-पंडित! इसमें बुरा भी क्या है? जब आप लोग उनका घी-दूध खा रहे हो, उन्हें माता और पिता कहते हो, उनसे खेत में काम करवा रहे हो तो मरने के बाद कैसे वही गाय माता अछूत हो जाती है?'

मैं थोड़ा पर्सनल हो गया था। कपिल ने फिर याद दिलाया, 'फिर ये केस! मुकदमा ये क्या मामला है?' बिल्कुल ये ज्यादतियां, ये भेदभाव, ये

'कुदरत की करामात देखिये कि इसी बीच एक ऐसा कानून आया कि काश्तकार जिन जमीनों पर काश्त कर रहे थे, जहां उनकी हैसियत सिर्फ मुजारे की थी वे उन जमीनों के मालिक हो गए। सरकार ने जमीनें हमारे नाम कर दीं।

शोषण और अत्याचार सब इसी केस से संबंध रखते हैं कपिल। इसीलिए सुना रहा हूं! केस का हुआ यूं कि ये सिलसिला मुसलसल चलता रहा। साल दर साल। इस बीच मेरी पत्नी को एक-एक कर आठ लड़के हो गए। बच्चे बड़े होने लगे तो खर्चे बढ़ने लगा। पत्नी की इच्छा थी कि बच्चों को स्कूल में पढ़ाया जाए। मेरे तो अधिकतर दिन जमींदारों की सेवा में जाया हो जाते थे। और वहां से कुछ मिलता नहीं था। पढ़ने के लिए कोपियां, किताबे, कपड़े-लत्ते कहां से जुटाता। लेकिन पत्नी का निश्चय दृढ़ था। उसकी की मेहनत से बच्चे इतने तो पढ़-लिख गए कि आज आराम से जिंदगी गुजार रहे हैं। सरकारी नौकरी कर रहे हैं। बिसनेस कर रहे हैं। आज सभी आराम से जी रहे हैं। मौज में हैं, अपना-अपना परिवार अच्छे से चला रहे हैं। उन्हीं की बदौलत आज ये केस जीत पाया हूं। केस का सारा पैसा बच्चे ही तो दे रहे हैं. मैं तो बस निमित मात्र हूं।'

'कुदरत की करामात देखिये कि इसी बीच एक ऐसा कानून आया कि काश्तकार जिन जमीनों पर काश्त कर रहे थे, जहां उनकी हैसियत सिर्फ मुजारे की थी वे उन जमीनों के मालिक हो गए। सरकार ने जमीनें हमारे नाम कर दीं। सरकार के हिसाब से हम लोगों ने कुछ पैसा जमा किया, बकाया मामला दिया और हम मुजारे से मालिक हो गए। मुझे भी दस बीघा जमीन मिल गई। ये हमारे लिए जहां खुशी का दिन था वहीं जमींदार सज्जन सिंह के लिए पछतावे और मातम का दिन। हालांकि वे लोग हम लोगों से अपने सारे काम उसी तरह करवाते रहे उसके बाद भी बरसों तक। हम लोग भी उनका एहसान मानकर काम किये जा रहे थे। बदले में जो भी आटा-सत्तू वे लोग देते हम स्वीकार करते लेकिन अब जमीन कमाने का शौक भी हो गया। बच्चों ने खूब मेहनत की और जमीन सोना उगलने लगी। हमारी जमीन में अदरक, मकई, गेहूं, टमाटर, लहसुन और धान की लहलहाती फसलें देख जमींदारों के कलेजे पर सांप लौटने लगे। पहले जितनी मेहनत से हम उनके लिए काम कर रहे थे, उससे दोगुनी मेहनत से अपने लिए करने लगे। अब मेरे साथ काम करने के लिए आठ जवान बेटे भी थे। अब छोटे बच्चे पढ़ रहे थे और बड़े नौकरी करने लगे थे। व्यस्तता के चलते जमींदारों के हेल्ले (सामूहिक श्रम) के काम तो छूट गए। अब हम लोगों पर सबसे अधिक भार यदि कोई रह गया था तो वह

था उनके मृत पशुओं की गति-मुक्ति, जिसे हमने भी अपनी नियति समझ लिया था। हम मान बैठे थे कि जिस तरह आदमी की गति-मुक्ति पंडों के हाथ से होती है वैसे ही पशुओं की हमारे हाथ से। गाय-माता उनकी और मुक्ति करें हम। बैल भी उनके पिता। हम अपनी माता की गति-मुक्ति तो करते ही थे उनकी माताओं और पिताओं की भी करनी होती थी। जब उन्होंने देखा कि ये तो हम से भी अधिक प्रोग्रेस करने लग पड़े हैं तो जमीन पर कब्जा करने के लिए आ धमके! इकठ्ठे होकर जमीन पर जबरदस्ती कब्जा करने के लिए ठंडे, तलवारें, गंडासे लेकर भिड़ गये। पर वे अपने मकसद में कामयाब न हो सके। पुलिस ने उन्हें वहां से खदेड़ दिया तो ये कहते हुए कोर्ट में केस कर दिया कि ये हमारी जमीन थी, है और रहेगी। ऊपर से जान से मार डालने की भी धमकियां दीं, जातिसूचक शब्दों से अपमान किया। उन्हें लग रहा था कि हम लोग डर जायेंगे और जमीन छोड़ देंगे, लेकिन ये उनकी भूल थी।'

कपिल ये पूरी कहानी अपने केस से मिलाकर देख रहा था। उसे भी समझ आ गया कि बिल्कुल यही तो हुआ है उसके साथ भी। उसने कहा हमारा केस भी सेम है हमारे साथ भी इसी तरह अन्याय हुआ है। अब मैं भी अपील करूंगा आपके केस का रेफ्फेरेंस देकर। लेकिन ये केस किस तरह से खास हो गया था, आप लोगों की क्या मांग थी कोर्ट से, जिससे हक में फैसला दिया कोर्ट ने?'

कपिल, हुआ यूं कि आज की तारीख में सभी बच्चे कुदरत की मेहरबानी से अच्छे सेटल हैं। खूब कमा खा रहे हैं। सभी बेटों ने शहरों में प्लाट और फ्लैट्स ले रखे हैं। आनंद है। बेटों ने कहा है कि ऐसी जमीनें तो हम दस जगह और खरीद लें। लेकिन जिस बात के लिए सभी जमींदार हमें बदनाम करते हैं न! कि हम लोगों को मुफ्त में मिली है ये जगह! बस यही बात इस केस की असल जड़ है। मेरी कोर्ट से एक ही गुजारिश थी कि यदि मेरी और मेरी पत्नी की अस्सी साल की सेवा। उसके बाद मेरे छोटे-छोटे बच्चों की भी बीस-तीस साल की सेवा। वो भी ऐसी सेवा जिसे अमानवीय कहा जाएगा, जो इन लोगों ने डरा धमकाकर करवाई। वकील साहब बताएंगे शायद इसे अनड्यू इनफ्लूएंस कहते हैं!'

'बिल्कुल सही कहा रवि जी, एडवोकेट तो आप भी हो गए हो पांच साल के इस केस में।' एडवोकेट वर्धन ने पीछे देखे बिना स्टेरिंग घुमाते हुए कहा।

'यहां अमानवीय लफ़्ज बड़ी अहमियत रखता है! मेरी और मेरे पूरे परिवार की इतनी लंबी सेवा की क़ीमत दस बीघा जमीन भी नहीं बनती है, तो कोई बात नहीं। मैं तैयार हूं पूरी की पूरी जमीन इनके नाम करने को! लेकिन मेरी अस्सी साल की सेवा के बदले ये लोग मेरे परिवार की ऐसी ही सेवा पूरे परिवार सहित सिर्फ आठ दिन कर दें। मैं आज के नियम के अनुसार पूरी मजदूरी भी दूंगा और पूरी दस बीघा जमीन भी! यदि नहीं कर सकते तो दुबारा ये बात मत कहना कि तुम्हारी जमीन हमें मुफ़्त में मिली है। न ही एक इंच जमीन वापस लेने का ख्वाब देखना। बस इतनी-सी बात थी। इस बात को ये लोग कैसे मान लेते। इस तथाकथित ऊंच-नीच वाले समाज में छोटे न हो जाते ये लोग। बस, हाई कोर्ट ने भी फैसला हमारे हक में दे दिया। मैंने तो ये भी कहा कि यदि धर्म के हिसाब से ऋण की बात मानते हो। जिसमें कहा जाता है कि माता-पिता के ऋण से उऋण होने के लिए संतान उत्पन्न करनी होती है। इसी तरह बाकी के ऋणों से भी उऋण होना होता है। आप लोग भी तो हमारी इस सेवा के ऋणी हैं। धर्म में तो खूब विश्वास है न आप लोगों का? इस ऋण से तभी उऋण हो पायेंगे न जब आप भी हमारी या हमारे बच्चों की ऐसी ही सेवा करोगे। तभी आप लोगों की भी गति-मुक्ति हो पाएगी। चलो हमारी बात छोड़िये जिन पशुओं के दूध-घी खाया है आप लोगों ने उनके ऋण से कैसे उऋण होंगे बिना उनकी गति किये? और हम तो अब बिल्कुल न करेंगे इनके पशुओं की गति।'

'बिल्कुल सही और आपकी इसी बात से जज साहब भी बहुत खुश हुए थे जब आपने कठघरे में खड़े हो कर ये बात जोर देकर कही थी। अंत में, और एक बात कहते-कहते रो ही पड़े थे आप!" एडवोकेट वर्धन ने घर के पास गाड़ी को पार्क करते हुए कहा।

कपिल ने तालियां बजा दी 'वाह जीजा जी मान गए आपके दिमाग को।'